**ओ३म्**

**‘ईश्वर के सच्चे एवं यथार्थ स्वरूप की उपलब्धि का प्रमुख स्रोत**

**ऋषि दयानन्द का सत्यार्थप्रकाश एवं उनके अन्य ग्रन्थ’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 संसार में ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखने वाले और न रखने वाले दोनों प्रकार के मनुष्य निवास करते हैं। किसी कवि ने तो यहां तक कह दिया है कि **‘खुदा के बन्दों को देखकर खुदा से मुनकिर हुई है दुनिया, कि जिसके बन्दे ऐसे हैं वह कोई अच्छा खुदा नहीं।’** आज के हालात में यह पंक्तियां अधिकांशतः सत्य सिद्ध होती हैं। संसार में शताधिक मत-मतान्तर एवं धर्म गुरु विद्यमान हैं। परन्तु यह ईश्वर के जिस स्वरूप का प्रचार करते हैं वह भोलेभाले धर्म पिपासु मनुष्यों को भ्रमित ही करते हैं। किसी मत व सम्प्रदाय में ईश्वर का भ्रान्तियों से सर्वथा मुक्त ज्ञान व ईश्वर का स्वरूप प्राप्त नहीं होता। सभी मतों व धर्म गुरुओं के अनुयायियों की ईश्वर प्राप्ति किंवा पूजा पद्धतियां भी अलग अलग हैं जिनसे ईश्वर प्राप्त हो सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। यही कारण था कि ऋषि दयानन्द (1825-1883 ई0) जब 14 वर्ष के बालक थे तो शिवरात्रि के दिन शिवपूजा व उपवास करते हुए उन्हें मूर्तिपूजा की प्रक्रिया व विधि के प्रति भ्रम उत्पन्न हो गया था जिस कारण उन्होंने मूर्तिपूजा करना ही छोड़ दिया और संकल्प लिया कि वह ईश्वर के सच्चे स्वरूप व उसकी प्राप्ति के सच्चे साधनों, उपायों व ईश्वर की प्राप्ति की विधि का अनुसंधान कर उसे अपने जीवन में चरितार्थ कर जन्म-मरण के दुःखों से दूर होने का प्रयत्न करेंगे। वह अपने संकल्प को पूरा करने में सफल हुए और उसके बाद उन्होंने ईश्वर के स्वरूप व उसकी प्राप्ति विषयक ज्ञान को अपने तक सीमित न रखकर उसका देश-देशान्तर में प्रचार कर संसार के सभी मनुष्यों को उससे लाभान्वित किया।

 ऋषि दयानन्द ने जो अनुसंधान किया उसके परिणामों में उन्हें यह ज्ञात हुआ कि ईश्वर कोई एकदेशीय, मनुष्यों के समान, आकाश से जमीन पर उतरने ओर फिर वापिस लौट जाने वाली सत्ता नहीं जिसे पशुओं का मांस भोजन के रूप में प्रिय हो। जो किसी स्थान विशेष, आकाश या आसमान में निवास करता हो। स्वामी दयानन्द जी ने संसार में उपलब्ध ईश्वर का वर्णन करने वाले सभी धार्मिक व इतर ग्रन्थों का अध्ययन किया। अनुमानतः उन्होंने तीन हजार से भी अधिक ग्रन्थों का अध्ययन किया था और पाया कि संसार में वेद ही, सूर्य की भांति, स्वतः प्रमाण ग्रन्थ हैं जिनका एक एक शब्द और वाक्य ईश्वरीय शब्द और वाक्य है। ईश्वर ने वेदों का ज्ञान सृष्टि की आदि में चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा को तत्कालीन मनुष्यों व भावी मनुष्यों व उनकी सन्ततियों के कल्याणार्थ दिया था। परम्परा से चला आया यह ज्ञान आज भी हमें शुद्ध रूप में उपलब्ध होता है। ईश्वरीय ज्ञान वेद की भाषा भी ईश्वरीय ही होती है व है। अतः लोगों को इस ईश्वरीय भाषा का अर्थ जानने व समझने में मुख्यतः मध्यकालीन लोगों को अपनी अज्ञानता व योग्य आचार्यों के अभाव में कठिनाई हुई और वह उसके यथार्थ से विपरीत यौगिक अर्थों के स्थान पर लौकिक अर्थ करने लगे। किसी को वेद में इतिहास दृष्टिगोचर होता था तो किसी को जादू टोना। इसका कारण वेदों का अर्थ करने वाले लोगों की अपात्रता व अयोग्यता थी। ऋषि दयानन्द ने अनुसंधान व प्रयास कर वेदों के शब्दों के सत्य अर्थ करने की ऋषि प्रणाली, अष्टाध्यायी, महाभाष्य व निरुक्त विधि का भी अनुसंधान किया। उन्होंने अपने गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती से इसका अध्ययन किया और उसके अधिकारी विद्वान बने। विद्या समाप्ति के बाद उन्होंने अपनी आगरा से कैरोली की यात्रा में वेदों को प्राप्त किया और उनका अध्ययन कर उनके आधार पर ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति सहित ईश्वर के सच्चे स्वरूप व गुण, कर्म व स्वभाव पर प्रकाश डाला। उनके इस कार्य से सभी मतों की नींव हिल गई क्योंकि सभी मध्यकालीन मतों की नींव अविद्या व अल्पज्ञान पर आधारित है जिसमें सत्य कम व अधिकांश असत्य भरा हुआ है।

 इससे पूर्व की हम ऋषि दयानन्द द्वारा ईश्वर के स्वरूप की सत्यासत्य की परीक्षा कर निर्णीत ईश्वर के वैदिक सत्यस्वरूप का वर्णन करें, यह भी बता देना आवश्यक है कि ऋषि दयानन्द ने सन् 1863 ई. से धर्म प्रचार करना आरम्भ किया था। इसके लिए वह देश के अधिकांश भागों में गये और वहां के बुद्धिजीवी व विद्वतजनों से चर्चा कर प्रवचन, उपदेश व व्याख्यान द्वारा अपनी वैदिक मान्यताओं व प्रचार किया। इसी क्रम में उन्होंने 16 नवम्बर, सन् 1869 ई0 को काशी नगरी में लगभग तीस पौराणिक मूर्तिपूजक देश के शीर्षस्थ विद्वानों से मूर्तिपूजा की सत्यता व उसके वेदों में प्रमाण को सिद्ध करने के लिए शास्त्रार्थ भी किया जिसमें वह विजयी हुए थे। दिनांक 10 अप्रैल, सन् 1875 को स्वामी जी ने देश विदेश में उनके जीवनकाल व बाद में प्रचार के लिए आर्यसमाज नामक एक धार्मिक और सामाजिक संगठन की स्थापना की। इससे कुछ समय पूर्व सन् 1874 में वह अपनी समस्त वा अधिकांश मान्यताओं व विचारों को प्रस्तुत करने वाला देश-विदेश के इतिहास का अपूर्व क्रान्तिकारी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश भी प्रस्तुत कर चुके थे जिसका एक संशोधित संस्करण उन्होंने अपनी मृत्यु से पूर्व तैयार कर लिया था। 30 अक्टूबर सन् 1883 को उनकी मृत्यु के बाद सन् 1884 में संशोधित सत्यार्थप्रकाश का प्रकाशन हुआ। आज देश विदेश में घर घर में बड़ी संख्या में लोगों द्वारा इस सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का अध्ययन किया जाता है। स्वामी दयानन्द जी ने अनेक महत्वपूर्ण, अपूर्व व युगान्तरकारी ग्रन्थ लिखने के साथ एक महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि उन्होंने वेदेां का सरल व सुबोध भाष्य संस्कृत एवं हिन्दी में किया है। सृष्टि के इतिहास में ऐसा वेद भाष्य पहले नहीं हुआ। स्वामी दयानन्द जी ने वेदों का भाष्य संस्कृत व सर्वाधिक लोकप्रिय लोक भाषा हिन्दी में करके एक नये इतिहास को जन्म दिया। उनके समय में संस्कृत भाषा में भी वेदों का कोई ऐसा भाष्य उपलब्ध नहीं था जो आर्ष सिद्धान्तों पर खरा हो। ऋषि दयानन्द ने वेदों का हिन्दी भाषा में भाष्य करके एक महान् व अपूर्व कार्य किया है। आज वेदों को ऋषि दयानन्द कृत हिन्दी भाष्य-भाषानुवाद की सहायता से सामान्य मनुष्यों सहित कृषक, श्रमिक, ज्ञानी व विद्वान सभी पढ़ते हैं। हमें भी इसका अध्ययन करने का अवसर मिला है। यह भी तथ्य है कि स्वामी जी तीव्र गति से वेदभाष्य का कार्य कर रहे थे परन्तु उनके अनेक विरोधियों के षडयन्त्र के परिणामस्वरूप 30 अक्टूबर सन् 1883 को उनका देहपात हो गया जिससे यह कार्य रूक गया। अवशिष्ट वेदेाभाष्य का शेष कार्य उनकी शिष्य परम्परा के अनेक विद्वानों के किया जिससे आज आर्य भाषा हिन्दी में चारों वेदों का भाष्य उपलब्ध होता है। ऐसे और भी अनेक महत्वपूर्ण कार्य हैं जो स्वामी जी ने अपने जीवन काल में किये हैं जिनमें गोरक्षा व हिन्दी रक्षा के लिए किये गये उनके कार्य अपूर्व व ऐतिहासिक हैं।

 सत्यार्थप्रकाश, आर्यसमाज के नियमों, आर्याभिविनय सहित आर्योद्देश्यरत्नमाला आदि अनेक ग्रन्थों में स्वामी दयानन्द की लेखनी से ईश्वर का ऐसा सत्य स्वरूप प्राप्त होता है जैसा उनसे पूर्व संस्कृत व संस्कृतेतर हिन्दी आदि भाषाओं में नहीं मिलता। संसार में अनेक मत मतान्तर हैं। उनके ग्रन्थों वा धर्म ग्रन्थों में भी स्वामी दयानन्द जी द्वारा वेदों के आधार प्रस्तुत किये गये ईश्वर के स्वरूप, गुण, कर्म, स्वभाव के अनुरूप ईश्वर के सत्यस्वरूप का वर्णन नहीं मिलता। स्वामी दयानन्द ने ईश्वर को सभी मनुष्यों व प्राणीमात्र का मित्र व मार्गदर्शक सिद्ध किया है। ईश्वरोपासना व यज्ञ आदि कर्मों को करने से वह मनुष्य का जीवनन्मुक्त होना मानते हैं जो मोक्ष प्राप्ति से पूर्व की स्थिति है। इस प्रकार का वर्णन संसार के किसी धर्मशास्त्र में प्राप्त नहीं होता। सभी मतों में अविद्या का बोलबाला है। कोई मत अपनी मान्यताओं के सत्य व असत्य की परीक्षा न तो करते हैं न हि आर्यसमाज द्वारा उठाये गये प्रश्नों वा शंकाओं का समाधान ही करते हैं। देश के प्रायः सभी नागरिक भी धनोपार्जन व भौतिक पदार्थों के संग्रह को ही महत्व देते हैं और लोभी धार्मिक विद्वानों के कुचक्र में फंसे रहते हैं। आईये ! ईश्वर के सत्य स्वरूप के विषय में ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के तीसरे नियम में क्या बताया है, उस पर दृष्टिपात कर लेते हैं। वह लिखते हैं कि ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। वही ईश्वर सभी मनुष्यों द्वारा उपासना (स्तुति, प्रार्थना, ध्यान, भक्ति) करने योग्य है। **’स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश’** पुस्तक में ईश्वर विषयक अपनी मान्यता लिखते हुए स्वामी दयानन्द कहते हैं कि ईश्वर कि जिसके ब्रह्म व परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त हैं, जिस के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं। जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्ता, धर्ता, हर्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूं। आर्योद्देश्यरत्नमाला पुस्तक भी ऋषि दयानन्द जी का एक प्रमुख ग्रन्थ है जिसमें ईश्वर के स्वरूप व गुण, कर्म एवं स्वभाव का उल्लेख है। यह पूर्णतः आर्यसमाज के तीसरे नियम व **‘स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश’** के अनुरूप है। ऋषि का एक अन्य ग्रन्थ आर्याभिविनय है जिसमें ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना को ही मुख्य विषय बनाया गया है। हम इसका पहला मन्त्र ईश्वर के स्वरूप जिसमें उसके गुण, कर्म व स्वभाव वर्णित हैं और साथ ही स्तुति, प्रार्थना व उपासना भी है, प्रस्तुत करते हैं।

 आर्याभिविनय का प्रथम मन्त्र है **‘ओं शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः।।’** इसका ऋषि दयानन्द द्वारा किया गया व्याख्यान इस प्रकार है। ‘हे सच्चिदानन्दान्तस्वरूप ! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ! हे अद्वितीयानुपमजगदादिकारण ! हे अज, निराकार, सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन् ! हे जगदीश, सर्वजगदुत्पादकाधार ! हे सनातन, सर्वमंगलमय, सर्वस्वामिन् ! हे करुणाकरास्मत्पितः, परमसहायक ! हे सर्वानन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक ! हे अविद्या अन्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक ! हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्य प्रसारक ! हे अधमोद्धारक, पतितपावन, मान्यप्रद ! हे विश्वविनोदक, विनयविधिप्रद ! हे विश्वासविलासक ! हे निरंजन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार ! हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद ! हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक ! हे दारिद्रयविनाशक, निर्वैरिविधायक, सुनीतिवर्धक ! हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक ! हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक ! हे धर्मसुप्रापक ! हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद ! हे सन्ततिपालक, धर्मसुशिक्षक, रोगविनाशक ! हे पुरुषार्थप्रापक, दुगुर्णनाशक, सिद्धिप्रद! हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताड़न्, गर्वकुक्रोधकुलोभविदारक! हे परमेश, परेश, परमात्मन्, परब्रह्मन्, हे जगदानन्दक, परमेश्वर, व्यापक, सूक्ष्माच्छेद्य ! हे अजरामृताभयनिर्बन्धानादे ! हे अप्रतिमप्रभाव, निर्गुणातुल, विश्वाद्य, विश्ववन्द्य, विद्वद्विलासक, इत्याद्यनन्तविशेषणवाच्य ! हे मंगलप्रदेशवर ! ‘‘शं नो मित्रः” आप सर्वथा सबके निश्चित मित्र हो, हमको सर्वदासत्यसुखदायक हो। हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर ! ‘‘शं वरुणः” आप वरुण, अर्थात् सबसे परमोत्तम हो, सो आप हमको परमसुखदायक हो। ‘‘शन्नो भवत्वर्यमा” हे पक्षपातरहित धर्मन्यायकारिन् ! आप अर्यमा (यमराज) हो, इससे हमारे लिए न्याययुक्त सुख देने वाले आप ही हो। ‘‘शन्नः इन्द्र” हे परमैश्वर्यवन्, इन्द्रेश्वर ! आप हमको परमैश्वर्ययुक्त स्थिर सुख शीघ्र दीजिए। हे महाविद्यवाचोऽधिपते! ‘‘बृहस्पति” बृहस्पते, परमात्मन्। हम लोगों को (बृहत्) सबसे बड़े सुख को देनेवाले आप ही हो। ‘‘शन्नो विष्णुः उरुक्रमः” हे सर्वव्यापक, अनन्तपराक्रमेश्वर, विष्णो! आप हमको अनन्त सुख देओ, जो कुछ मांगेंगे सो आपसे ही हम लोग मांगेंगे, सब सुखों का देनेवाला आपके विना कोई नहीं है। हम लोगों को सर्वथा आपका ही आश्रय है, अन्य किसी का नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयामय सबसे बड़े पिता को छोड़के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे। आपका तो स्वभाव ही है कि अंगीकृत को कभी नहीं छोड़ते सो आप हमको सदैव सुख देंगे, यह हम लोगों को दृढ़ निश्चय है। ऋषि दयानन्द ने मन्त्र की व्याख्या करते हुए अपनी वेदों पर अगाध श्रद्धा व अधिकार का जो परिचय दिया है, वह विश्व के साहित्य में दुर्लभ है। ऐसा वेदव्याख्यान, भाष्य या मन्त्रार्थ शायद इससे पहले कभी किसी भाष्यकार ने नहीं किया है। यह भी ईश्वर के यथार्थ स्वरूप व उसके गुण, कर्म व स्वभाव सहित स्तुति, प्रार्थना व उपासना के यथार्थ स्वरूप पर प्रकाश डालता है।

 हम ऋषि दयानन्द के प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को जनसामान्य में ईश्वर के सत्य स्वरूप को प्रस्तुत करने वाला संसार का प्रमुख ग्रन्थ व धर्म पुस्तक मानते हैं। यह ग्रन्थ किसी विशेष वर्ग का नहीं अपितु संसार के प्रत्येक मनुष्य का धर्म पुस्तक है। इसका कारण है कि इसमें प्रकाशित सभी बातें सत्य व निर्भ्रांत हैं। असत्य या भ्रामक बातें कोई नहीं है। सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम् समुल्लास में ईश्वर के स्वरूप सहित उसके सभी पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। आरम्भ में ऋग्वेद के चार और यजुर्वेद का एक मन्त्र देकर उनकी व्याख्या की गई है जिससे ईश्वर के यथार्थ स्वरूप पर प्रकाश पड़ने सहित कुछ भ्रान्तियों को भी दूर किया गया है। इसके बाद प्रश्नोत्तर शैली में ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध किया गया है। यह प्रकरण हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। (प्रश्न) आप ईश्वर-ईश्वर कहते हो परन्तु इसकी सिद्धि किस प्रकार करते हो? (उत्तर) सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से। (प्रश्न) ईश्वर में प्रत्यक्षादि प्रमाण कभी नहीं घट सकते। (उत्तर) **इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्।। (यह गौतम महर्षि कृत न्यायदर्शन का सूत्र है)** जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख, दुःख, सत्यासत्य विषयों के साथ सम्बन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष करते हैं परन्तु वह निभ्र्रम हो। अब विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है, गुणी का नहीं। जैसे चारों त्वचा (आंख, जिह्वा तथा नाक) आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथिवी उस का आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानदि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। इससे यह सिद्ध होता है कि पृथिवी में जो रचना विशेष ज्ञानादि गुण अनुभव होते हैं उनसे ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा, ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाते हैं। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है। और जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उस को उसी समय दोनों (परमात्मा व जीवात्मा) प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सन्देह है? क्योंकि कार्य को देख के कारण का अनुमान होता है। इसके बाद स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर विषयक प्रायः सभी प्रकार की शंकाओं का प्रश्नोत्तर शैली में ही समाधान किया है। विस्तार भय से हम उनका उल्लेख नही कर रहे हैं। हम सत्यार्थप्रकाश को सम्पूर्ण धर्मग्रन्थ वा शास्त्र समझते हैं जो संसार की सभी धर्म पुस्तकों में ईश्वर के सत्यस्वरूप का ज्ञान कराने सहित उसका साक्षात्कार एवं मोक्ष प्राप्त कराने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। जो भी व्यक्ति इसका अध्ययन करेगा वह इस जन्म व परजन्म में लाभ को प्राप्त होगा। जो मनुष्य वा व्यक्ति हानि नहीं उठाना चाहता उसे सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ को पढ़ना चाहिये। इसका अध्ययन कर आप ईश्वर को प्राप्त कर सकेंगे। ओ३म् शम्।

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

ओ३म्

**‘मृतक शव को गाढ़ने की अपेक्षा उसका दाह संस्कार करना पर्यावरण, रोगों से बचाव व कृषि आदि अनेक दृष्टियों से उत्तम है’**

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

 कुछ समय पूर्व एक टीवी चैनल पर शव के अन्तिम संस्कार पर एक बहस हुई थी जिसमें हिन्दू, मुस्लिम व अन्य अनेक प्रतिनिधियों ने भाग लिया और अपने अपने मत के समर्थन में विचार प्रस्तुत किये। आज भी अधिकांश व सभी ईसाई व मुस्लिम बन्धु अपने शवों का अन्तिम कर्म अपने शवों को भूमि में गाढ़ कर ही करते हैं। शव को गाड़ने का विधान भी बाइबिल आदि ग्रन्थों में है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास में ईसाई मत की समीक्षा की है। बाईबिल के तौरेत के उत्पत्ति पर्व 23 की आयत 6 को उन्होंने प्रस्तुत किया है। यह आयत है ‘सो आप हमारी समाधिन (कब्र) में से चुन के एक में अपने मृतक को गाड़िये जिस तें आप अपने मृतक को गाड़े।’ अंग्रेजी में यह आयत इस प्रकार है **‘In the choice of our sepulchers bury thy dead…. But that thou mayest bury the dead (XXIII. 6.)’।** इसकी समीक्षा करते हुए स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि मुर्दों के गाड़ने से संसार को बड़ी हानि होती है क्योंकि वह सड़ के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है। इसके साथ स्वामी जी ने प्रतिपक्षियों की ओर से स्वयं एक प्रश्न प्रस्तुत किया है कि देखो ! जिससे प्रीति हो उसको जलाना अच्छी बात नहीं और गाड़ना जैसा कि उसको सुला देना है इसलिए गाड़ना अच्छा है। इसका समाधान करते हुए स्वामी जी लिखते हैं कि जो मृतक से प्रीति करते हो तो अपने घर में क्यों नहीं रखते? और गाड़ते भी क्यों हो? जिस जीवात्मा से प्रीति थी वह निकल गया, अब दुर्गन्धमय मट्टी से क्या प्रीति? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवी में क्यों गाड़ते हो क्योंकि किसी से कोई कहे कि तुझ को भूमि में गाड़ देवें तो वह सुन कर प्रसन्न कभी नहीं होता। उसके मुख आंख और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट, चूना डालना, छाती पर पत्थर रखना कौन सा प्रीति का काम है? और सन्दूक में डाल के गाड़ने से बहुत दुर्गन्ध होकर पृथिवी से निकल वायु को बिगाड़ कर दारुण रोगोत्पत्ति करता है। दूसरा एक मुर्दे के लिए कम से कम 6 हाथ लम्बी और 4 हाथ चैड़ी भूमि चाहिए। इसी हिसाब से सौ, हजार वा लाख अथवा क्रोड़ो मनुष्यों के लिए कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है। न वह खेत, न बगीचा, और न बसने के काम की रहती है। इसलिये सब से बुरा गाड़ना है, उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना, क्योंकि उसको जलजन्तु उसी समय चीर फाड़ के खा लेते हैं परन्तु जो कुछ हाड़ वा मल जल में रहेगा वह सड़ कर जगत् को दुःखदायक होगा। उससे कुछ एक थोड़ा बुरा जंगल में छोड़ना है क्योंकि उसको मांसाहारी पशु पक्षी लूंच खायेंगे तथापि जो उसके हाड़, हाड़ की मज्जा और मल सड़ कर जितना दुर्गन्ध करेगा उतना जगत् का अनुपकार होगा, और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जायेंगे।

 (प्रश्न) जलाने से भी दुर्गन्ध होता है। (उत्तर) जो अविधि से जलावें तो थोड़ा सा होता है परन्तु गाड़ने आदि से (जलाने में) बहुत कम होता है। और जो विधिपूर्वक जैसा कि वेद में लिखा है-वेदी मुर्दे के तीन हाथ गहिरी, साढ़े तीन हाथ चैड़ी, पांच हाथ लम्बी, तले में डेढ़ हाथ बीता अर्थात् चढ़ा उतार खोद कर शरीर के बराबर घी उसमें एक सेर में रत्ती भर कस्तूरी, मासा भर केशर डाल न्यून से न्यून आध मन चन्दन अधिक चाहें जितना ले, अगर-तगर, कपूर आदि और पलाश आदि की लकड़ियों को वेदी में जमा, उस पर मुर्दा रख के पुनः चारों ओर ऊपर वेदी के मुख से एक-एक बीता तक भर के उस घी की आहुति देकर जलाना लिखा है। उस प्रकार से दाह करें तो कुछ भी दुर्गन्ध न हो किन्तु इसी का नाम अन्त्येष्टि, नरमेध, पुरुषमेध यज्ञ है। और जो दरिद्र हो तो बीस सेर से कम घी चिता में न डालें, चाहे वह भीख मांगने वा जाति वालांे के देने अथवा राज्य से मिलने से प्राप्त हो परन्तु उसी प्रकार दाह करे। और जो घृतादि किसी प्रकार न मिल सके तथापि गाड़ने आदि से केवल लकड़ी से भी मृतक का जलाना उत्तम है क्योंकि एक विश्वा (20 फीटx20 फीट) भर भूमि में अथवा एक वेदी में लाखों क्रोड़ों मृतक जल सकते हैं। भूमि भी गाड़ने के समान अधिक नहीं बिगड़ती और कबर के देखने से भय भी होता है। इससे गाड़ना आदि सर्वथा निषिद्ध है।

मृतक के शव का वैदिक रीति से दाह संस्कार करना ही अतीत, वर्तमान में उत्तम रहा है और भविष्य के लिए भी उत्तम है। ऐसा करने से वायु में विकार न होने से रोगों से होने वाले दुःखों से मुक्ति होती है, शव को दफनाने में जो भूमि बेकार होती है, उससे कृषि की हानि होती है, उससे भी लाभ होता है और वायु विकार न होने से हमारा पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है। आज के वैज्ञानिक युग में जब कुछ मतों व धर्मों के लोग शव को दफनाने की मध्यकालीन परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं तो यह आश्चर्यजनक लगता है। ऐसा करना बुद्धि व ज्ञान सहित मानव हितों व देश हित के विरुद्ध है। विज्ञान के द्वारा कम्प्यूटर, हवाई जहाज, रेलगाड़ी, कार, स्कूटर आदि की खोज हुई तो सभी मतों व धर्मों ने आंख बन्द कर इन्हें अपना लिया, किसी ने अपनी अपनी परम्पराओं की दुहाई नहीं दी, इसी प्रकार शव का दाह करने में भी सत्य को ग्रहण कर असत्य को छोड़ने का उदाहरण सभी मतों व सम्प्रदायों को देना चाहिये। इससे देश व संसार का हित होगा। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**